THE HINDU

Date:04-12-21

Corridors of death

Elephants are victims of train collisions and electric fences in rising man-animal conflicts

Editorial

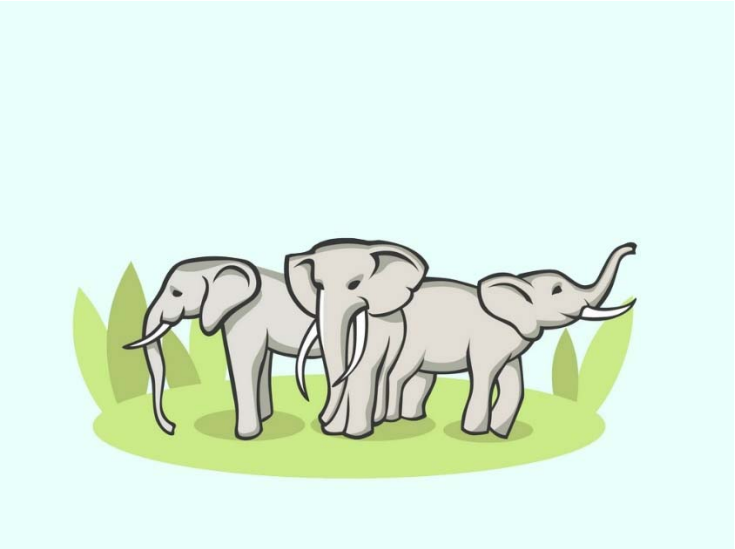

The death of five elephants, four of them cows, caused by trains colliding with them, and all within a week, has again highlighted the gaps in efforts to reduce man-animal conflicts in the country. On November 26, the first accident occurred near Madukkarai in Coimbatore district, Tamil Nadu that has seen many an elephant death on a rail track stretch that extends up to Kanjikode, Kerala. The second accident was near Jagiroad in Assam's Morigaon district, four days later. Both accidents were at night. Elephant deaths in railway accidents are not new in India. A reply by the Project Elephant division of the Union Ministry of Environment, Forest and Climate Change in May to a set of RTI questions highlighted reasons other than natural causes as having led to the killing of 1,160 elephants over 11 years ending December 2020; 741 deaths were due to electrocution; railway accidents accounted for 186 cases; poaching 169 and poisoning 64. The pattern of train accidents involving elephants has been studied by different stakeholders, including the Railways, Forest and Wildlife Departments and activists, especially with regard to the Madukkarai stretch. That a greater number of casualties getting reported are in elephant passages has been confirmed by the C&AG in its latest compliance audit report on the Ministry of Railways.

There are effective solutions in the case of two causes: electrocution and train hits. Installing hanging solar-powered fences, as has been planned in Tamil Nadu and Kerala, and planting citronella and lemon grass, as done in Golaghat district, Assam, to deter elephants are some of the large-scale options. The authorities should ensure that there are no illegal electric fences or barbed wire fences, which, instead, can be replaced with the solar powered ones. Needless to say, the participation of local communities is crucial. The critical role elephants play in biodiversity conservation must be highlighted, especially to those living in areas close to elephant corridors. The Environment Ministry and Ministry of Railways should also expedite proposals for elevated wildlife crossings or eco-bridges and underpasses for the safe

passage of animals. A finding of the C&AG was that after the construction of underpasses and overpasses in the areas under the jurisdiction of East Central and Northeast Frontier Railways, there was no death reported. The authorities should also expedite other recommendations made by the C&AG such as a periodic review of identification of elephant passages, more sensitisation programmes for railway staff, standardisation of track signage, installation of an animal detection system (transmitter collars) and 'honey bee' sound-emitting devices near all identified elephant passages. Of the 29,964 elephants in India, nearly 14,580 are in the southern region, and the State governments concerned and the Centre need to find lasting solutions to the problem of man-animal conflicts.

दैनिक जागरण

Date:04-12-21

चीन की दबंगई के खिलाफ खड़ी होती दुनिया

हर्ष वी. पंत, (लेखक नई दिल्ली स्थित आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में रणनीतिक अध्ययन कार्यक्रम के निदेशक हैं)

चीनी राष्ट्रपति शी चिनफिंग घरेलू सत्ता पर बड़ी तेजी से अपनी पकड़ को और मजबूत बना रहे हैं। इसके साथ ही वह चीन की बहुप्रचारित व्यापक शक्ति के प्रदर्शन में भी जुटे हैं। चीनी तिकड़में जितनी आक्रामक हो रही हैं, रणनीतिक विस्तार के लिए बीजिंग की महत्वाकांक्षाएं उतनी ही जटिल होती जा रही हैं। शी दुनिया को यही जताना चाहते हैं कि महाशक्ति के रूप में अंतत: चीन का उदय हो चुका है, परंतु दुनिया की दिलचस्पी इसमें अधिक है कि यह उभार किस प्रकार हो रहा है? कुछ दिन पहले ही चीन ने आसियान देशों के साथ संवाद संबंधों के तीन दशक पूर्ण होने पर एक विशेष वर्चुअल कार्यक्रम आयोजित किया। उसमें शी ने दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों को आश्वासन देने का प्रयास किया कि चीन अपने छोटे पड़ोसी देशों को कभी परेशान नहीं करेगा। सम्मेलन में उन्होंने जोर देकर कहा, 'चीन हमेशा से आसियान का अच्छा पड़ोसी, मित्र और सहयोगी था, है और रहेगा।' चीनी राष्ट्रपति यह जताने में लगे थे कि चीन आसियान की एकता और स्थायित्व का हिमायती होने के साथ-साथ क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मामलों में उसकी व्यापक भूमिका का समर्थन भी करता है।

चूंकि चीन ने आसियान देशों को कोरोना संकट से निपटने के लिए वित्तीय संसाधन और टीके उपलब्ध कराए थे, इसलिए जब उनके साथ तीस वर्षों के कूटनीतिक एवं आर्थिक रिश्तों का जश्न मनाने का मौका हो तो उस अवसर पर डराने-धमकाने जैसे मुद्दों की चर्चा बेमानी लगती है। इसके बावजूद सच यही है कि उसके सभी रिश्तों में दादागीरी-दबंगई का भाव है। आसियान देश भी छिटपुट तरीकों से उससे छुटकारे की फिराक में हैं। आसियान नेता चीन के इस दबाव में नहीं झुके कि म्यांमार सैन्य तानाशाही के मुखिया को सत्र में भाग लेने की अनुमति दी जाए और म्यांमार को एक गैर-राजनीतिक प्रतिनिधि भेजने पर बाध्य किया जाए। सम्मेलन के बाद जारी संयुक्त बयान में अंतरराष्ट्रीय कानूनों के अनुपालन की महत्ता को भी रेखांकित किया गया। इनमें संयुक्त राष्ट्र समुद्री कानून संधि (1982) को सम्मान के साथ-साथ दक्षिण चीन सागर में मुक्त आवाजाही और उसके ऊपर से उड़ानों को अनुमति देने की प्रतिबद्धता भी दोहराई। यह

हिंदू-प्रशांत को लेकर आसियान के नजरिये के अनुरूप ही है, जिसका एक भौगोलिक इकाई के रूप में चीन लगातार विरोध करता आया है। इस क्षेत्र में चीन को लेकर उसके कुछ निकट सहयोगियों के नरम रवैये का जमीनी स्तर पर शायद ही कुछ असर दिखे।

दक्षिण चीन सागर में चीनी आक्रामकता निरंतर जारी है। छल-प्रपंच से जुड़ी अपनी तिकड़मों के जरिये वह विवादित जल क्षेत्र में अपने हवा-हवाई दावों को दोहरा रहा है। उसकी इस रणनीति के खिलाफ पीड़ित देशों के पास अभी तक कोई कारगर तोड़ नहीं। विवादित क्षेत्रों में चीन सैन्य दस्तों का धड़ल्ले से इस्तेमाल कर रहा है। यहां तक कि इलाकों पर कब्जे के ऐसे निर्लज्ज प्रयासों के खिलाफ आसियान देशों को एक संयुक्त मोर्चा बनाना मुश्किल पड़ रहा है। जिस दिन शी कह रहे थे कि चीन छोटे पड़ोसी देशों को तंग नहीं करेगा, उससे कुछ दिन पहले ही उनके तटरक्षक दस्ते विवादित जल क्षेत्र में फिलीपींस सेना की आपूर्ति से जुड़ी नौकाओं की राह रोकने में लगे थे। वे जहाजों पर वाटर कैनन का इस्तेमाल कर रहे थे। जहां फिलीपींस ने सम्मेलन में इस मुद्दे को उठाया, वहीं अन्य देशों ने मौन रहना ही मुनासिब समझा। जहां तक इस प्रकार के छद्म युद्ध की बात आती है तो चीन ताइवान के खिलाफ अपनी इस मुहिम को मुखरता से आगे बढ़ाता दिखता है। पिछले कुछ दिनों में ताइवान के दक्षिण-पश्चिम हिस्से में चीनी वायुसेना के विमानों ने बार-बार घुसपैठ की है। यह इलाका ताइवान नियंत्रित प्रतास द्वीप के निकट है। यह न केवल ताइवान की रक्षा पंक्ति की परीक्षा लेने के लिए किया जा रहा है, बल्कि इसके माध्यम से अमेरिकी सहयोग की सीमा-रेखा को भी परखा जा रहा है। ताइवान स्ट्रेट में तनाव भड़काने के इस खतरनाक खेल में बीजिंग इस क्षेत्र में सुरक्षा साझेदार के रूप में वाशिंगटन की साख को चुनौती दे रहा है।

कई देशों में कोरोना के नए प्रतिरूप ओमिक्रोन की दस्तक के साथ दुनिया को इस चीनी वायरस से मुक्ति मिलने की हाल-फिलहाल कोई राह नहीं दिख रही है। उसे देखते हुए मूल कोरोना वायरस के उद्गम को लेकर चीन की भूमिका एक बड़ी बहस का बिंदु बनी हुई है। ऐसे में कोरोना को लेकर चीन की शुरुआती प्रतिक्रिया पर एक तरह से निशाना साधते हुए अमेरिका ने ओमिक्रोन की त्वरित पहचान और दुनिया के साथ उसकी जानकारी साझा करने पर दक्षिण अफ्रीका की भूरि-भूरि प्रशंसा करने में देरी नहीं की। अमेरिकी विदेश मंत्री एंटनी ब्लिंकन की प्रतिक्रिया से यह प्रत्यक्ष साबित होता है। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकी विज्ञानियों द्वारा ओमिक्रोन की तत्काल पहचान और वहां की सरकार द्वारा उससे संबंधित जानकारियों को तुरंत साझा करने में प्रदर्शित की गई पारदर्शिता की सराहना करते हुए कहा कि यह विश्व के लिए एक मिसाल बननी चाहिए। उन्होंने चीन का नाम भले न लिया, लेकिन उनका संकेत स्पष्ट था, क्योंकि चीन कोरोना के उद्गम को लेकर पारदर्शिता का परिचय देने में नाकाम रहा। यह पहलू निकट भविष्य में चीन को लेकर वैश्विक नजरिये को आकार देने में प्रभावी भूमिका निभाता रहेगा।

घरेलू मोर्चे पर शी चिनफिंग एक सम्राट के रूप में परिवर्तित हो रहे हैं। हाल में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के ऐतिहासिक प्रस्ताव में उनके तीसरे पंचवर्षीय कार्यकाल को औपचारिक स्वीकृति दे दी गई। उन्हें कार्ल मार्क्स और माओत्से तुंग जैसे समाजवादी विचार के दिग्गज प्रवर्तकों की पांत में रखा जा रहा है। सत्ता की ताकत से वह चीन में अपने विरोधियों को हाशिये पर धकेल रहे हैं, परंतु चीनी सीमा से बाहर उनकी शक्ति अभी भी मान्यता की प्रतीक्षा में है। यदि चीनी शक्ति का उद्देश्य निर्विवाद वैश्विक नेता के रूप में उभरना है तो पिछले कुछ समय के दौरान विभिन्न मोर्चों पर उसकी जो गतिविधियां देखने को मिली हैं, उनसे शी को अपना वैश्विक एजेंडा पूरा करना मुश्किल होगा। धीरे-धीरे ही सही, लेकिन शी का एजेंडा उजागर तो हो रहा है और यह तय है कि निरंकुश ताकत उनके व्यापक लक्ष्य की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:04-12-21

शहरों की हकीकत

टी. एन. नाइनन

शहरों को रैंकिंग देना एक फलता-फूलता कारोबार है। द इकनॉमिस्ट इंटेलिजेस यूनिट ने इस सप्ताह सबसे महंगे और सबसे सस्ते शहरों से संबंधित अपनी सूची पेश की। सस्ते शहरों की सूची में अहमदाबाद शीर्ष 10 में शुमार है। उसके साथ दमिश्क और त्रिपोली जैसी जगहें हैं। इससे पहले सरकार ने देश के सबसे साफ शहरों की सूची पेश की थी जिसमें एक बार फिर इंदौर शीर्ष पर था। सरकार ने रहने के लिहाज से सुगम शहरों की भी एक सूची पेश की। इस सूची में बेंगलूरु शीर्ष पर रहा। उसके बाद पुणे का स्थान था। श्रीनगर और धनबाद इस सूची में सबसे खराब दर्जे पर रहे। सेंटर फॉर साइंस ऐंड एन्वायरनमेंट ने भी ऐसी ही एक सूची में बेंगलूरु को शीर्ष पर रखा। उसके बाद चेन्नई का स्थान था जबकि सरकारी रैंकिंग में उसे चौथा स्थान दिया गया था। स्मार्ट शहरों की सूची भी जल्दी ही सामने आ सकती है। इसमें इसलिए वक्त लगा कि कुछ मानक अत्यधिक जटिल हैं।

कुछ रुझानों को पहचानना आसान है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बड़े शहरों की रैंकिंग अच्छी नहीं आती। मुंबई और दिल्ली तथा कोलकाता भी बमुश्किल ही किसी रैंकिंग में ऊंचे स्थान पर आते हैं। जबकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक रहने लायक शहर भी मझोले किस्म के ही हैं। मिसाल के तौर पर वियना, ऑकलैंड और वैंकूवर। हालांकि मेलबर्न ने लंबे समय तक अच्छा प्रदर्शन किया। सबसे बड़े यूरोपीय, अमेरिकी और चीनी शहर सबसे अधिक रहने लायक नहीं हैं। आंशिक तौर पर ऐसा इसलिए कि वहां अचल संपत्ति बहुत महंगी है। इसके अलावा आने जाने में लगने वाला समय और प्रदूषण जैसी समस्याएं तो हैं ही। जापान ने इस सिलसिले को बरकरार रखा और ओसाका टोक्यो से आगे है।

दूसरा रुझान यह है कि विंध्य की पहाडिय़ों के दक्षिण में मौजूद शहरों का प्रदर्शन बेहतर रहा। गुजरात के तीन बड़े शहर भी इसमें शामिल हैं। जीवन की गुणवत्ता की वैश्विक रैंकिंग में जीने की लागत तथा स्वास्थ्य सेवा सात प्रमुख मानकों में शामिल थे। इन दोनों मानकों पर मंगलूरु, कोयंबत्तूर, चेन्नई तथा तिरुवनंतपुरम का प्रदर्शन बेहतर रहा। यह भारतीय शहरों के संदर्भ के हिसाब से ठीक ही है क्योंकि वे ज्यादातर चार में से तीसरे दर्जे पर हैं। यह कमजोर प्रदर्शन खराब आय तथा गर्म मौसम की बदौलत है। यही कारण है कि देश के बेहतरीन शहरों में से कई दक्षिण के पठार पर हैं। इंदौर भी मालवा के पठार के छोर पर है और वह समुद्री सतह से 1,800 फुट की ऊंचाई पर है जबकि कोयंबत्तूर (1,350 फुट) नीलगिरि की ओर आसान पहुंच मुहैया कराता है।

यदि भारत को सफलतापूर्वक शहरीकरण करना है तो उसे दूसरे दर्जे के उन शहरों पर ध्यान केंद्रित करना होगा जिनकी आबादी 10 लाख से 50 लाख के बीच हो। उनमें से कुछ स्मार्ट सिटी योजना के तहत सरकार के ध्यान में हैं। यह अच्छी बात है लेकिन बिना ढांचागत बदलावों मसलन प्रत्यक्ष निर्वाचित मेयर, समुचित संपत्ति कर प्रणाली, नागरिकों के अनुरूप

डिजाइनिंग तथा ऊंची कार्यालयीन इमारतों के लिए आनुपातिक नियम आदि बनाकर ही शहरों के बेकायदा फैलाव को रोका जा सकता है।

परंतु इस तथ्य में एक सबक भी छिपा है कि बड़े शहर भले ही जीवन की गुणवत्ता के मामले में कितने भी पिछड़े हों लेकिन उनका चुंबकीय आकर्षण बरकरार है। यकीनन सफल शहरों का मानक गुण यही है कि वे बाहरी लोगों का स्वागत करते हैं। यही कारण है कि मुंबई में इतने अधिक गुजराती, पारसी, दक्षिण भारतीय हैं और एक समय वहां बगदाद से यहूदी भी आए। यही कारण है कि दिल्ली में पंजाबियों का दबदबा कम हुआ है और अपने चरम दिनों में भी कोलकाता में इतने अधिक गैर बंगाली लोग थे। यहां तक कि चीनी, अमेरिकी तथा अन्य मूल के लोग भी वहां रहते थे। यही मिश्रण महानगरों को दिलचस्प और वैश्विक बनाता है जबकि छोटे शहर क्षेत्रीय रह जाते हैं।

बेंगलूरु एक दिलचस्प जगह है जिस पर अध्ययन किया जा सकता है। वह कई मानकों मसलन प्रदूषण, स्वास्थ्य सेवा, सुरक्षा आदि पर कोयंबत्तूर और मंगलूरु से पीछे है लेकिन इसके बावजूद वह अधिकांश शीर्ष या शीर्ष के आसपास नजर आता है। उसकी जलवायु, तमाम तरह के लोगों का वहां रहना, हवा, किफायती अचल संपत्ति और क्रय शक्ति सूचकांक पर उसकी उच्च रैंकिंग उसे उन लोगों की पसंद का शहर बनाते हैं जो महंगी अचल संपत्ति वाली मुंबई और खराब रैंकिंग वाले दिल्ली-गुडग़ांव-नोएडा से दूरी बनाना चाहते हैं। इसके बावजूद सबसे तेज वृद्धि दूसरे दर्जे के शहरों में हो रही है। सूरत की आबादी बीते चार दशक में औसतन 70 फीसदी से ज्यादा बढ़ी है। भविष्य में भारत के शहरीकरण की सफलता या नाकामी की कहानी ऐसे ही शहरों में लिखी जाएगी।

Date:04-12-21

आर्थिक मजबूती और विदेश नीति व्यवहार

जैमिनी भगवती, (लेखक पूर्व भारतीय राजदूत, विश्व बैंक में कॉरपोरेट फाइनैंस प्रमुख और इस समय सीएसईपी में प्रतिष्ठित फेलो हैं)

चीन का आर्थिक उभार और तकनीकी महारत को पूरी दुनिया स्वीकार करती है। मगर हाल तक यह बहुत कम स्वीकार किया गया है कि भारतीय क्षेत्र में सैन्य घुसपैठ, अरुणाचल प्रदेश पर लंबे-चौड़े दावों और पश्चिम के साथ बातचीत समेत वैदेशिक मोर्चे पर चीन के आक्रामक रुख की वजह उसकी आर्थिक ताकत में बढ़ोतरी है। भारत सरकार ने अपनी विदेश नीति के समीकरणों में पड़ोसियों और प्रमुख शक्तियों के आर्थिक आकार, व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से संबंधित आंकड़ों और सैन्य ताकत में बदलाव पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया।

इसकी एक मुख्य वजह यह है कि भारत का विदेश मंत्रालय, वाणिज्य एवं उद्योग और वित्त मंत्रालय आम तौर पर दिल्ली या विदेशी राजधानियों में सरकार के प्रमुखों की बैठकों से पहले समन्वित बैठकों को छोड़कर अलग-अलग काम करते हैं। हालांकि विदेश मंत्रालय और रक्षा मंत्रालय में बेहतर समन्वय है और उम्मीद है कि अब यह चीन के साथ वास्तविक नियंत्रण रेखा पर भावी घटनाक्रम के परिदृश्य का विश्लेषण कर रहा है।

पश्चिम और सोवियत संघ के बीच पहले की दुश्मनी 21वीं सदी में भी जारी है। हालांकि रूस के खिलाफ दुश्मनी थोड़ी कमजोर पड़ी है। सीरिया में बाल्टिक रिपब्लिक्स, यूक्रेन, पोलैंड और रूस के दखल की चिंताओं के कारण अमेरिका और यूरोपीय देशों ने रूस से पैदा खतरों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है। वर्ष 2014 में यूक्रेन के क्रीमिया पर रूस के कब्जा कर लेने के बाद पश्चिम की चिंताएं वाजिब लगी थीं। लेकिन पश्चिम को भी यह समझने की जरूरत है कि रूस भी यूरोपीय संघ के पूर्व वारसा संधि में शामिल देशों को शामिल करने के लिए पूर्व की तरफ कदम बढ़ाने से चिंतित है। इकॉनमिस्ट के 13 नवंबर के अंक में एक आलेख का शीर्षक है- 'व्लादीमिर पुतिन- रूस का दमन का नया युग- इससे पश्चिम से टकराव बढ़ेगा।' पश्चिमी प्रकाशनों में इकॉनमिस्ट का पुतिन के मानवाधिकार हनन करने जैसे एलेक्सी नवालनी को निशाना बनाने की आलोचना करना उचित है।

रूस की सैन्य तकनीकी महारत का भी हवाला दिया जाता है, जो इस तथ्य से साफ है कि भारत और चीन ने हाल में उससे एच-400 मिसाइल रक्षा प्रणाली खरीदी है। हालांकि रूस की व्यापक आर्थिक संभावनाओं को अंग्रेजी मीडिया में कम जगह मिलती है क्योंकि उसकी शेष विश्व के साथ व्यापार और निवेश की बातचीत मुख्य रूप से तेल, गैस और खनिजों का एक अहम स्रोत बनी हुई है।

इसके विपरीत पश्चिम की प्रवृत्ति रही है कि उसने चीन के अपनी सीमाओं के भीतर रहने वाले उइगुर और तिब्बतियों जैसे करोड़ों लोगों के दमन की अनदेखी की है। साफ तौर पर चीन और रूस को लेकर पश्चिम के रुख में अंतर की वजह यह है कि पश्चिम की वित्तीय क्षेत्र की कंपनियां चीन में बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए निवेश कर भारी मुनाफा कमा रही हैं। यह आर्थिक लिहाज से उपयुक्त है क्योंकि चीन में विश्व में सबसे अधिक पर्याप्त प्रशिक्षित कामगार हैं और उनका वेतन विकसित देशों और रूस से भी काफी कम है। इस वेतन लागत के लाभ की बदौलत ही चीन विभिन्न इंजीनियरिंग उत्पादों का बड़ा निर्यातक है।

चीन के अंतरराष्ट्रीय दबदबे की वजह उसका दुनिया भर में भारी निवेश भी है और इसी वजह से वह इस समय कोयला, लौह अयस्क, तेल और कृषि उत्पादों जैसी जिंसों का सबसे बड़ा आयातक है।

किसी भी देश का राजस्व संग्रह और इसलिए निवेश एवं वृद्धि की क्षमता मुख्य रूप से उस देश की अर्थव्यवस्था के आकार और उसके घटकों से तय होती है। वर्ष 2010 से 2020 तक चीन की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की तुलना में 16.2 से बढ़कर 27 फीसदी हो गई। 1990-91 में सोवियत संघ के विभाजन के बाद रूस की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका के मुकाबले 53.1 फीसदी से घटकर 2020 में 44.3 फीसदी पर आ गई। इसके बावजूद 2020 में चीन की प्रति व्यक्ति आय रूस की केवल 61 फीसदी ही है। साधारण प्रति व्यक्ति तुलना में अंतर-देश मूल्य शृंखला के साथ समन्वय और वैश्विक निगमों के साथ तकनीकी गठजोड़ जैसे अन्य बहुत से संकेतकों को भी जोडऩे की जरूरत है। असल में घरेलू उत्पादित माल, सैन्य उपकरणों और सेवाओं की गुणवत्ता और अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धी क्षमता किसी देश की आर्थिक सेहत और विदेश नीति के विकल्पों का एक मापक होती है। चीन की प्रति व्यक्ति आय तो अधिक है ही, इसने भारत को तकनीकी उपलब्धियों में भी काफी पीछे छोड़ दिया है।

आंतरिक कारकों और आर्थिक एवं सैन्य ताकत से चीन की आक्रामकता बढ़ी है। इसके नतीजतन लोकतंत्रों खास तौर पर एशियाई लोकतंत्रों के लिए खतरा चीन है। रूस अपने जीवाश्म ईंधन के निर्यात के लिए चीन पर निर्भर है। ऐसे में यह आश्चर्यजनक है कि पश्चिम रूस को चीन की तरफ धकेल रहा है। माना जाता है कि 19वीं सदी के रूसी नाटककार और

लघु कहानीकार एंटनी चेखोव ने टिप्पणी की थी कि 'किसी भी मूर्ख को संकट का सामना करना पड़ सकता है -यह रोजमर्रा का जीवन है जो आपको थका देता है।' यह बात विदेश नीति के मुद्दों पर भी लागू होती है। वर्ष 2020 में भारतीय क्षेत्र में चीन की घुसपैठ के बाद भारतीय सशस्त्र बल चुनौती देने के लिए बहादुरी से उठ खड़े हुए। हालांकि प्रत्याशित खुफिया-विदेश नीति विश्लेषण और सैन्य तैयारी की कमी थी। यह कहा जाता है कि जब प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने एमईए को भारत की छवि को मजबूत करने के लिए कुछ और कदम उठाने को कहा तो पूर्व विदेश सचिव एपी वेंकटेश्वरन ने कहा कि 'तस्वीर मूल से ज्यादा चमकदार नहीं हो सकती।'

इसी तरह भारतीय रणनीतिक सोच के बारे में निष्कर्ष यह है कि यह कितनी भी बेहतर हो, लेकिन देश की व्यवस्थागत आर्थिक-तकनीकी खामियों और सामाजिक मतभेदों की भरपाई नहीं कर सकती।

जनसत्ता

Date:04-12-21

सुरक्षा के बांध

संपादकीय

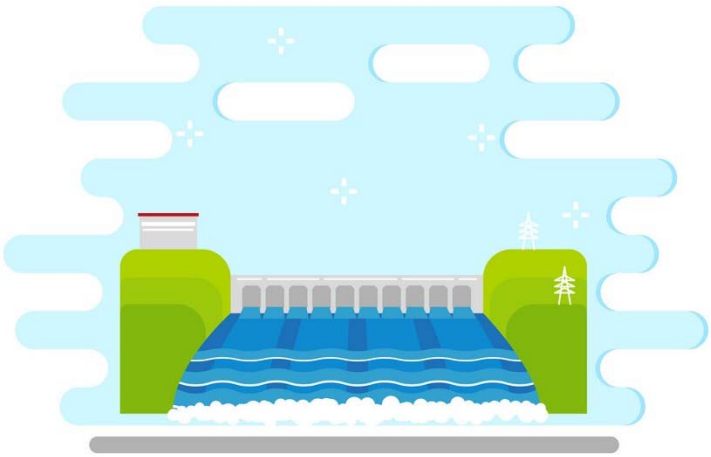

नदियों पर बांध बना कर जगह-जगह पानी रोकने की व्यवस्था इसलिए की गई कि उससे पानी की बर्बादी रुकेगी, उस पानी का उपयोग खेती-किसानी और उद्योगों आदि में हो सकेगा। बड़े बांधों पर बिजली संयंत्र भी लगाए गए। मगर ज्यादातर जगहों पर बांधों के रखरखाव में लापरवाही देखी जाती है, जिसके चलते भारी बरसात के समय उनके टूट कर आसपास के गांवों-कस्बों को जलमग्न कर देने की अशंका बनी रहती है। अक्सर बरसात में कहीं न कहीं बांध के टूटने और तबाही मचाने की खबरें आती रहती हैं। इसके अलावा बांधों के जलसंग्रहण क्षेत्र में गाद भर जाने की वजह से उनकी क्षमता काफी कम हो गई है, जिसके चलते अक्सर भारी बारिश के वक्त उन्हें अचानक खोल दिया जाता है, जिससे शहरों में तबाही मचनी शुरू हो जाती है। इन स्थितियों से बचने और बांधों को सुरक्षित बनाने के लिए उनसे संबंधी कानून बनाने की मांग लंबे समय से की जा रही थी। अब वह कानून बन जाने से इस दिशा में बेहतर नतीजों की उम्मीद स्वाभाविक है। हालांकि इस कानून का मसौदा करीब बीस साल पहले ही बन गया था, मगर उसे संसद में पेश नहीं किया जा सका। दो साल पहले इसे लोकसभा ने पास कर दिया था। राज्यसभा के पटल पर चालू सत्र में रखा जा सका और अंततः उसे मंजूरी मिल गई।

हालांकि इस विधेयक को लेकर राज्यसभा में विपक्षी दलों ने विरोध किया था। उनकी मांग थी कि इसे प्रवर समिति के समक्ष रखा जाना चाहिए। मगर सरकार ने उनकी मांग मानने से इनकार कर दिया और विधेयक ध्वनिमत से पारित हो गया। अगर इसे प्रवर समिति को सौंपा जाता तो जाहिर है, इसे कानून का रूप लेने में अभी और वक्त लगता। इस कानून के बनने के बाद सरकार का दावा है कि बांधों की सुरक्षा और उन्हें लेकर राज्य सरकारों की जवाबदेही सुनिश्चित हो सकेगी। देश के कुल बांधों में से करीब बानबे फीसद दो राज्यों की सीमाओं पर स्थित हैं। उन्हें लेकर राज्य सरकारों में विवाद की स्थिति भी देखी जाती है। बांधों का रखरखाव संवेदनशील मसला है। इसमें किसी भी प्रकार की लापरवाही या कोताही लाखों लोगों की जान के साथ खिलवाड़ साबित हो सकती है। इसलिए राज्य सरकारों की जवाबदेही तय करने वाले कानून की जरूरत से इनकार नहीं किया जा सकता। इनमें से ज्यादातर बांधों को बने हुए काफी समय बीत चुका है, उनकी मरम्मत, सफाई आदि पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

हालांकि बांधों की अवधारणा को कई लोग ठीक नहीं मानते। उनका कहना है कि बांध हमेशा बरसात के वक्त तबाही का कारण बनते हैं। मगर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इससे खेती और उद्योग समूहों को पानी उपलब्ध कराने में जो मदद मिलती है, वह किसी और साधन से मुमकिन न होता। नदी जोड़ योजना का प्रस्ताव भी इसी दृष्टि से रखा गया था। बांध तभी खतरनाक साबित होते हैं, जब उनका उचित रखरखाव न हो। बांधों की मजबूती बनाए रखने के अलावा उनकी जलसंग्रहण क्षमता को भी बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है। इसके लिए आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल की दरकार है। बांधों की सुरक्षा से जुड़ा कानून बन जाने के बाद यह उम्मीद जगी है कि बांधों से संबंधित शिकायतों और उनसे संभावित खतरों का व्यावहारिक आकलन करते हुए उन सब पर पारदर्शी ढंग से काम हो सकेगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:04-12-21

डब्ल्यूटीए का चीन को झटका

संपादकीय

विश्व महिला युगल टेनिस की पूर्व नंबर एक खिलाड़ी पेंग शुआई के साथ हो रहे व्यवहार को लेकर विश्व महिला टेनिस संगठन (डब्ल्यूटीए) ने चीन में अपनी सारी प्रतियोगिताएं रद्द करके उसे कड़ा सबक सिखाया है। टेनिस जगत के अनेक खिलाड़ियों ने इस कदम की सराहना की है जबकि चीन डब्ल्यूटीए के इस कदम से बुरी तरह बौखलाया हुआ है। सोशल मीडिया पर चीन के पूर्व उप-प्रधानमंत्री जांग गाओली पर यौन शोषण का आरोप लगाना पेंग के लिए जान आफत में डालने वाला साबित हुआ है। नवम्बर से ही लगभग गायब पेंग के आरोपों को भी सार्वजनिक मंचों से हटाया जा चुका है। हालांकि हाल ही में सरकारी मीडिया द्वारा जारी तस्वीरों और वीडियो में पेंग दोस्तों के साथ और बच्चों के एक टेनिस टूर्नामेंट में दिखी थीं। अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति के अध्यक्ष थॉमस बाक को भी पेंग से वीडियो कॉल पर बात करते देखा गया, लेकिन जैसा कि चीन का पुराना रिकार्ड है किसी को भी इस पर भरोसा नहीं हुआ। भले ही पेंग को स्वस्थ और सामान्य जीवन जीते हुए दिखाया गया है, लेकिन चीन के खिलाफ अभी जो कार्रवाई वैश्विक खेल संगठन ने की है,

उससे स्पष्ट होता है कि चीन पर एकाएक यकीन कोई नहीं कर पा रहा है। चीन की सरकार ने उनके आरोपों पर चुप्पी साध रखी है। चीन में इंटरनेट पर इस विषय पर चर्चा पर भी बैन लगा दिया है। डब्ल्यूटीए के चीफ एक्जीक्यूटिव स्टीव साइमन के अनुसार संगठन को नहीं लगता कि पेंग के साथ सब ठीक है। उनके स्वतंत्र, सुरक्षित और सेंसर, दबाव और भय से मुक्त होने पर गंभीर रूप से शक है। पेंग के आरोपों की पूरी पारदर्शिता से जांच होनी चाहिए। डब्ल्यूटीए का आरोप है कि शुआइ को खुलकर बात करने की अनुमति नहीं दी जा रही और उस पर दबाव बनाया जा रहा है कि वह अपने आरोप वापिस ले । इस कदम से भड़के चीन का धमकी भरी भाषा में कहना है कि पेंग के मामले का राजनीतिकरण और द्वेषपूर्ण प्रचार नहीं किया जाना चाहिए। यह उस खिलाड़ी के भले के लिए भी अच्छा नहीं है और महिला टेनिस खिलाड़ियों को इससे खेलने के उचित और समान मौके भी नहीं मिल सकेंगे। डब्ल्यूटीए का यह फैसला ऐसे समय पर आया है जब चीन फरवरी, 2022 में शीतकालीन ओलंपिक खेलों की मेजबानी करने वाला है। मानवाधिकारों पर चीन के रिकॉर्ड को देखते हुए वैश्विक अधिकार समूहों ने शीतकालीन ओलंपिक के बहिष्कार की मांग की है। चीन को ध्यान रहे कि दुनिया भर के खिलाड़ी एकजुट हो चुके हैं, कोई झूठ-फरेब नहीं चलेगा। उसे हर हाल में पेंग के मामले में सतर्कता बरतनी होगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:04-12-21

तीन कानूनों से आगे की बात

हिमांशु, (एसोशिएट प्रोफेसर जेएनयू)

बेशक यह कहा जा सकता है कि कृषि कानूनों को लागू करने और उनको रद्द करने से जमीन पर बहुत कुछ नहीं बदला है, लेकिन इससे कम से कम इतना तो हुआ ही है कि हमारे कृषि संकट के बारे में जन-जागरूकता बढ़ी है और उनका समाधान निकालने के लिए ठोस प्रक्रिया की आवश्यकता सभी ने महसूस की है।

अब यह इतिहास है कि नवंबर की 19 तारीख को अचानक ही अपने संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने उन तीन विवादास्पद कृषि कानूनों को वापस लेने का एलान किया, जिनको पिछले साल सितंबर में संसद से पारित किया गया था। शीतकालीन सत्र के पहले ही दिन उन कानूनों को वापस भी ले लिया गया। जिस तरह से पिछले साल इन कानूनों को पास किया गया था, ठीक उसी तरह अब बिना किसी चर्चा के उनको निरस्त भी कर दिया गया। ऐसे में, उनको क्यों पेश किया गया और क्यों रद्द किया गया, यह अब भी आधिकारिक तौर पर एक अनसुलझा सवाल है।

बहरहाल, संसदीय प्रक्रिया से इन कानूनों को आगे बढ़ाने से पहले ही इनका वापस होना तय था। सर्वोच्च अदालत ने उनको लागू करने पर रोक लगा रखी थी। तथ्य यही है कि सरकार उन तीनों कृषि कानूनों के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं से पीछे हटी है। यह आवश्यक वस्तु अधिनियम (ईसीए) के इस्तेमाल से स्पष्ट है, जो उन कानूनों में एक था, जिनको

संशोधित किया गया था। न सिर्फ कुछ मामलों में ईसीए का इस्तेमाल असंगत बना दिया गया था, बल्कि यह भी दिखता है कि केंद्र सरकार उन प्रावधानों को लाने के लिए तैयार हो गई थी, जिनसे यह कानून खत्म हो जाता।

हालांकि, यह भी स्पष्ट है कि सरकार की अपनी हिचकिचाहट से कहीं अधिक कानूनों की वापसी मुख्यत: किसान संघों के विरोध के कारण हुई। एक साल से अधिक समय से उनका अनवरत प्रदर्शन चल रहा था। इसमें उन्होंने अपनी जान की भी परवाह नहीं की। खुद प्रधानमंत्री ने अपने संबोधन में यह माना कि सरकार प्रदर्शनकारी किसानों को तीनों कानूनों की खूबियों के बारे में समझाने में विफल रही। पंजाब, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में आने वाले दिनों में होने वाले चुनावों ने भी कानून-वापसी की राह आसान की होगी, क्योंकि यहां आंदोलन खासा मजबूत था।

किसान सरकार के रवैये से नाराज थे। केंद्र ने जिस तरह से तमाम हितधारकों, किसान संगठनों के प्रतिनिधियों और सांसदों के विरोध के बावजूद बिल को आगे बढ़ाया, वह तरीका किसानों को रास नहीं आया। ये कानून उस वक्त किसानों पर थोपे गए, जब देश महामारी से जूझ रहा था और अधिकांश क्षेत्रों में मांग में कमी के कारण हमारी अर्थव्यवस्था सिकुड़ रही थी। मुमकिन है कि कानूनी प्रक्रिया को पूरा करने में की गई जल्दबाजी और फिर, किसान आंदोलन को 'राष्ट्र-विरोधी' और 'विदेशी धन से पोषित आंदोलन' के रूप में बदनाम करने की कोशिशों ने किसानों को उत्तेजित किया हो। फिर भी, असली कारण तो कानूनों के प्रावधान थे। उनमें न केवल कम उत्पादन-कीमत और घटते लाभ जैसी किसानों की मुख्य चिंताएं शामिल नहीं थीं, बल्कि कृषि-उत्पाद मार्केटिंग और वादा खेती पर निजी क्षेत्र को खुला हाथ देने से किसानों को अपनी गरीबी और बढ़ती नजर आ रही थी। किसान लगभग पांच वर्षों से अलग-अलग राज्यों में प्रदर्शन कर रहे हैं। कृषि कानूनों की महज वापसी से उनकी चिंता खत्म होने वाली नहीं है। किसानों के एक वर्ग पर कानूनों की खूबियों का एहसास न होने के लिए दोष मढ़ देना न केवल गलत कृत्य है, बल्कि यह कृषि क्षेत्र की सच्चाई से आंखें मूंद लेना है। लागत व्यय बढ़ने और कम कीमत मिलने जैसी कठिनाइयों से कृषि क्षेत्र लगातार जूझ रहा है। इसके साथ ही, साल 2016-17 से हमारी अर्थव्यवस्था में मांग में गिरावट भी आई है। इनमें से अधिकांश चिंताएं पिछले एक साल से और ज्यादा बढ़ गई हैं, क्योंकि डीजल, बिजली और खाद पर लागत बिक्री दर की तुलना में कहीं ज्यादा बढ़ी है। हाल ही में जारी ग्रामीण-मजदूरी के आंकड़े और किसानों की स्थिति पर हमारा आकलन इसकी पुष्टि करता है कि ग्रामीण मजदूरी में गिरावट आई है और खेती से होने वाली आमदनी घटी है।

किसान कृषि क्षेत्र में सुधार के विरोधी नहीं हैं। आम धारणाओं के विपरीत, वे तो सुधार के हिमायती रहे हैं। सुधार के कई उपाय तो उन्होंने खुले दिल से स्वीकार भी किया है, जिनमें कृषि उत्पादन विपणन समिति (एपीएमसी) अधिनियम में राज्य और केंद्र के स्तर पर हुए बदलाव शामिल हैं। इसके अलावा, न्यूनतम समर्थन मूल्य को गारंटी बनाने की उनकी मांग भी एक के बाद दूसरी केंद्र सरकारों द्वारा किए गए वादों के अनुरूप ही है। सरकारें उनसे स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के मुताबिक उचित पारिश्रमिक मूल्य देने का वादा करती रही हैं। हालांकि, लाभकारी कीमतों को सुनिश्चित करने का कौन-सा तरीका बेहतर होगा, इस पर अलग-अलग राय हो सकती है, लेकिन एमएसपी व्यवस्था में सुधार की जरूरत से कतई इनकार नहीं किया जा सकता। जिन समस्याओं के समाधान की दरकार है, उनमें एमएसपी-निर्धारण में राजनीतिक दखल को रोकना, एमएसपी से जुड़ी खरीद-प्रक्रिया में फसलवार व क्षेत्रवार असंतुलन को खत्म करना, वितरण व भंडारण को कमजोर बनाने वाली नीतियों को बदलना और सीमा शुल्क व व्यापार प्रतिबंधों में अनुचित दखल को रोकना शामिल हैं। ये सभी समस्याएं सबको पता हैं और कई कमेटियों में इस पर बहस भी हो चुकी है।

इसी प्रकार, केस-रिसर्च प्राथमिकताओं, खेती से जुड़ी अन्य सेवाओं के विस्तार और निवेश संबंधी प्राथमिकताओं में भी सुधार की दरकार है। इनमें से ज्यादातर में सरकारी खर्च कम कर दिए गए हैं, और नियम-कानूनों से भी बहुत थोड़े संस्थागत सुधार किए गए हैं। इनमें से अधिकांश के लिए जहां बहुत अधिक वित्तीय सहायता की जरूरत नहीं है, बल्कि कानूनी दखल की दरकार है, वहीं कुछ के लिए राज्यों को निवेश बढ़ाना होगा और खर्च करना होगा। देखा जाए, तो अभी इस क्षेत्र में जरूरी सुधारों को आगे बढ़ाने का बिल्कुल सही समय है। किसान प्रतिनिधित्व वाला पैनल एक अच्छी शुरुआत हो सकती है।